पुरुष (आत्मा) के सम्बन्ध में श्वेताश्वर उपनिषद् के विचार : एक विवेचन

[1]डॉ. भारत भूषण सिंह, [2]डॉ. संदीप ठाकरे

सहायक प्राध्यापक
योग विभाग
[1]हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल उत
[2]इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,अमरकंटक- 484887(मध्यप्रदेश)

शोध सारांश:

श्वेताश्वतर उपनिषद आत्मतत्व के विविध पहलुओं का निरूपण करती है। इस उपनिषद में आत्मा को अनन्त, अविनाशी, अनादि, नित्य, सर्वव्यापी, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, निःशेषज्ञानस्वरूप, अचिन्त्य, शुद्ध और स्वतन्त्र आदि गुणों से परिभाषित किया गया है। इसके अलावा, यह उपनिषद आत्मा को मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि, प्राण और इंद्रियों के आत्मा से संबद्ध भाग के रूप में भी वर्णित करती है। उपनिषद में आत्मा को ज्ञान के स्रोत, आधार और उद्देश्य के रूप में भी देखा जाता है। यहां बताया जाता है कि आत्मज्ञान के माध्यम से ही मनुष्य को मुक्ति मिलती है और वह अविद्या और संसार से परे स्थिति को प्राप्त करता है। श्वेताश्वतर उपनिषद आत्मतत्व की महत्त्वपूर्णता, आत्मज्ञान के प्राप्ति के मार्ग, और आत्मा की अद्वैत और ईश्वरीय स्वरूप को समझाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। आत्मा का अविनाशी स्वरूप: गीता में आत्मा को अविनाशी, अजन्मा और अमर कहा गया है। आत्मा को शरीर से अलग और नित्य माना गया है। यह दर्शाता है कि आत्मा अन्तर्यामी है और मरने योग्य नहीं है। आत्मा से अलग चित्त की अवस्था ही दुख है । यह चित्त ही समस्त विचारों, वासनाओं तथा इच्छाओं का केन्द्र है । इसी के कारण सुख-दुख का अनुभव होता है ।आत्मा का दर्शन पाकर सभी दुःखो से मुक्ति संभव है।उपनिषदो मे ब्रह्म व आत्म के संबंध मे विस्तृत चर्चा की गयी है।जिस विद्या अथवा ज्ञान के द्वारा ब्रह्म का सामीप्य अथवा साक्षात्कार हो वह विद्या या ज्ञान ही उपनिषद् है।प्रस्तुत शोध पत्र में श्वेताश्वतरोपनिषद के पुरुष (आत्मा) से संबंधित तत्त्वो पर विचार किया गया है।

बीज शब्द : ब्रह्म ,आत्मा , प्राण, क्लेश, बंधन,चैतन्य , उपनिषद्

प्रस्तावना

श्वेताश्वतरोपनिषद्' में तो योग- तत्त्व, तप, ध्यान,आत्मा आदि का वर्णन स्पष्ट रूप से झलकता है। योगतत्त्व से ही उस परमतत्त्व परब्रह्म परमात्मा व आत्मा की प्राप्ति सम्भव है। इसलिये योगविद्या या प्राणविद्या के प्रकाशक के रूप में भी उपनिषदें महत्त्वपूर्ण हैं।शास्त्रो मे आत्मा के संबंध मे विभिन्न तथ्य प्राप्त होते है। जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा रहा है।

शब्द कल्पद्रुम के अनुसार आत्मा शब्द का निर्वचन निम्न रूपेण है- 'आत्मा (आत्मन्) पुं. अतति सन्ततभावेन जाग्रदादिसर्वावस्थासु अनुवर्तते।' उणादिकोष के अनुसार- 'अत सातत्यगमने मनिण् (सतिभ्यां मनिन् मनिणौ)1 आत्मा की यह निष्पत्ति है।

महर्षि दयानन्द के अनुसार 'अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति वा स आत्मा2 अर्थात् निरन्तर कर्मफलों को जो प्राप्त करता है अथवा भोगता है, वह आत्मा है। जो सब जीवादि में निरन्तर व्यापक हो रहा है, वह आत्मा है।

अमरकोष में आत्मा के लिए कहा- क्षेत्रज्ञः, आत्मा, पुरुषः, ब्रह्म"3 अद्वैत वेदान्त में जीवात्मा 'अस्मद्' शब्द का विषय है। अस्मद् विषयत्वात् इसी प्रकार विवेकचूड़ामणि भी आत्मा को 'अहम्' पद की प्रतीति से लक्षित मानती है।4 यह नित्य और आनन्दघन, अखण्ड, अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप, बुद्धि का साक्षी और सत्-असत् से भिन्न है।5 आत्मा के विषय उपरोक्त महत्व को देखते हुए प्रत्येक मनुष्य को आत्म-बोध की दिशा मे अग्रसर होने का प्रयत्न करना चाहिए। ओर इस प्रयत्न मे श्वेताश्वतरोपनिषद के आत्मज्ञान संबंधित विचार निम्न प्रकार से सहयोगी हो सकता है।

आत्मा के पर्यायवाची शब्द-

संहिताओं में 'ब्रह्मन्' शब्द आत्मा के समान माना गया है। पुरुष, हंस, सुपर्ण, अजोभोग, प्राण, जीव, सत्य, विश्वकर्मन्, बृहस्पति, प्रजापति और हिरण्यगर्भ- ये सभी आत्मा के अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले शब्द हैं। परन्तु उपनिषदों में प्रमुख रूप से ब्रह्मन्, पुरुष, हंस और कभी-कभी सुपर्ण, जीव, प्राण और सत्य शब्दों का प्रयोग भी आत्मा के लिए किया गया है।6

श्वेताश्वतोपनिषद् में आत्मतत्त्व

श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रारम्भ में इस जगत् के मूल कारण पर विचार करते हुएउसके कारणभूत तत्त्वों में जीवात्मा का नाम भी गिनाते हैं। (क) श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार यह आत्मा ही शरीर की उपाधि से मुक्त होने पर देही अथवा जीवात्मा कहलाता है।7(ख) अर्थात् यह हंस देहाभिमानी होकर नवद्वार वाले देहरूप पुर में बाह्य विषयों को ग्रहण करने के लिए चेष्टा करता है अतः आत्मा ही देहोपाधि से ग्रस्त होने पर जीव संज्ञा से जाना जाता है।8 यह आत्मा ही जीव है। अतः संसार के अनादित्व का व्यञ्जक होने के कारण आत्मा ही जीव नाम से सम्बोधित किया जाता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा है कि तीन अज अर्थात् नित्य हैं। उनका जन्म कभी भी नहीं होता है, उनमें अज प्रकृति है यह अज जीवात्मा उस त्रिगुणात्मिका प्रकृति जिससे समस्त दृश्य जगत् निर्मित होता है। उससे निर्मित पदार्थों का उपभोग करता है। एक तीसरा अज और है जो इस प्रकृति निर्मित पदार्थों का उपभोग नहीं करता है, वह परमात्मा है। इस प्रकार ये तीनों प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज कहे गए हैं, तीनों जगत् के कारण हैं।9 अर्थात् जीवात्मा का कोई कारण नहीं अपितु जीवात्मा जगत् के कारणों में एक है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर में इन तीन के स्वरूप को प्रतिष्ठित किया गया है।

आत्मा का बन्धन, बन्धन से छुटकारा-

साथ ही यहाँ यह भी बता दिया गया है कि जीवात्मा जब राग-द्वेष या आसक्ति में डूबकर प्रकृति के बन्धन में बन्ध जाता है यानि संसारासक्त हो जाता है (मुह्यमान) हो जाता है, तो शोक में डूब जाता है, तब वह इससे उबरने का, पार होने का उपाय विभिन्न साधकों द्वारा सेवित (योग साधना) द्वारा प्रभु, ईश्वर की महिमा का, उस महान् सत्ता का साक्षात्कार करता है, तभी वह संसार के शोक- सन्तापों से मुक्त होता है।10 इस मन्त्र में जीवात्मा के जगत् के बन्धन में पड़ने और उससे छुटकारे का उपाय भी बता दिया गया है।

आत्मा अजन्म व नित्य है-

उपनिषदें स्पष्ट घोषणा करती हैं कि जीवात्मा भौतिक तत्त्वों से निर्मित कोई वस्तु नहीं है। अपितु यह अनादि है। कठोपनिषद् में ही नहीं अपितु हमारे आलोच्य ग्रन्थ गीता में भी स्पष्ट है कि यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है और नहीं किसी वस्तु का परिवर्तित रूप है।11 उपनिषदें जीवात्मा को नित्य एवं शाश्वत और पुनर्जन्म लेने वाली मानती हैं।

जीवात्मा और ब्रह्म में अन्तर-

उपनिषदों की यथार्थवादी व्याख्या के अनुसार जीव और ब्रह्म दोनों ही अपनी पृथक् सत्ता रखते हैं।स्पष्ट रूपेण व्याख्यान किया कि ये ईश्वर और जीव क्रमशः सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हैं, अर्थात् ईश हैं। ये दोनों ही अजन्मा हैं इन दोनों से भी पृथक् एक अज अर्थात् प्रकृति पुरुष के उपभोग का साधन बनती है।12 इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा है कि पृथक्-पृथक् कहा गया है जो भोक्ता(जीव), भोग्य (जगत्) और प्रेरक (ईश्वर) यह तीन प्रकार से कहा गया पूर्ण ब्रह्म ही है। इससे बढ़कर और कोई ज्ञातव्य पदार्थ नहीं है।13

जीवात्मा ब्रह्म के दर्शन कैसे करें-

उपनिषदों में यह भेद हमें अन्यत्र भी दृष्टिगत होता है। जहाँ अन्य अन्य उपनिषदों में जीवात्मा को ब्रह्म के दर्शन करने के लिए उपासना करने का कथन किया है, वहीं श्वेताश्वतर में ध्यानयोग का वर्णन इसी बात की पुष्टि करता है। जिस प्रकार मृत्तिका से मलिन हुआ बिम्ब (सोने या चाँदी का टुकड़ा) शोधन किए जाने पर तेजोमय होकर चमकने लगता है, उसी प्रकार देहधारी जीव आत्मतत्त्व का साक्षात्कार का अद्वितीय, कृतकृत्य और शोकरहित हो जाता है। आगे कहा है उस अजन्मा, निश्चल और समस्त तत्त्वों से विशुद्ध देह को जानकर सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है।14

जीवात्मा का परिमाण व स्थान

कई विद्वान् जिनमें रामानुज भी हैं, आत्मा को अणु परिमाण वाला मानते हैं। शंकराचार्य आत्मा को विभु मानते हैं। जैनी जीवात्मा का परिमाण न अणु है, न विभु, वे मध्यम परिमाण वाला मानते हैं। किन्तु उपनिषदों में सिद्धान्ततः आत्मा को अणु माना है। कठोपनिषद् में कहा है कि जिस आत्मतत्त्व का मैं प्रवचन करने लगा हूँ वह शरीरादि जड़ तत्त्वों से रहित हमारे अन्दर अणुरूप में विराजमान है।15इसी प्रकार श्वेताश्वतर में कहा है कि 'यह अणु से भी अणु और महान् से भी महान् आत्मा इस जीव के अन्तःकरण में स्थित है। आत्मा को जो विधाता की कृपा से ईश्वर रूप से देखता है वह शोक रहित हो जाता है।16

स्थान-

कठोपनिषद् में कहा है कि वह अन्तरात्मा सदा मानवों के हृदय में सन्निविष्ट हुआ अंगुष्ठपरिमाण स्थान में निवास करता है।17 इस प्रकार इसी भाव को श्वेताश्वतरोपनिषद् में बतलाया है। कि 'अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला अन्तरात्मा सर्वदा मनुष्यों के हृदय में सन्निविष्ट रहता है। जो विद्वान् इस हृदयगुहा में स्थित मन के स्वामी को विशुद्धमन से साक्षात्कार करके जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।18 इसी प्रकार आगे कहा है कि जो आरे (लकड़ी को चीरने का यन्त्र) की नोंक सदृश सूक्ष्म परमात्मा से भिन्न अस्तित्व वाला जीवात्मा योगियों द्वारा देखा गया है।19

यह बाल के सौवें भाग से भी सूक्ष्म है-

एक बाल की नोंक के सौवें भाग के पुनः सौ भागों में विभक्त करने पर, जो कल्पित भाग होता है, जीव का स्वरूप उसी के बराबर (अतिसूक्ष्म) समझना चाहिए, परन्तु वही अनन्तरूपों में विस्तृत भी हो जाता है।20

न यह स्त्री है, न पुरुष, न नपुंसक-

जीवात्मा सनातन व नित्य है, उसके लिए कहा है कि वह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। यह जिस-जिस शरीर को ग्रहण करता है उसी-उसी से सम्बद्ध हो जाता है।21

कर्मों का भोक्ता है-

यह जीवात्मा अन्न-जल के सेवन से जिस प्रकार शरीर परिपुष्ट होता है (उसकी वृद्धि होती है) उसी प्रकार संकल्प-स्पर्श, दृष्टि और मोह से जीवात्मा का जन्म और विस्तार (अनेक योनियों में) होता है। जीवात्मा अपने किये हुए कर्मों के फल के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न शारीरिक रूपों को बारबार धारण करता है।22

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी इस सिद्धान्त को माना है जो गुणों से युक्त, फल प्राप्ति के उद्देश्य से कर्म करने वाला और अपने किये हुए कर्म के फल का उपभोग करने वाला जीवात्मा है, वह प्राणों का अधिपति जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार विविध योनियों में गमन करता है।23 आत्मतत्त्व के विषय में ब्रह्मवेत्ता का अनुभव श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है कि ब्रह्मवेत्ता लोग जिसके जन्म का अभाव बतलाते हैं जो विभु होने के कारण सर्वगत है, मैं जानता हूँ।24

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप मे देखा जाए तो मनुष्य को अपने जीवन काल में ही अपने परलोक को सँवारने का सम्पूर्ण उद्योग करना चाहिए। परलोक सँवारने का अर्थ है-जीवन के मूल उद्देश्य को प्राप्त कर लेना।अर्थात आत्मज्ञान की प्राप्ति। ब्रह्मविद्या व आत्म विद्या के संबंध मे उपनिषद् उच्चकोटि के ग्रन्थ है।परा -अपरा, विद्या -अविद्या, ज्ञान की श्रेष्ठता, कर्म की गरिमा, भक्ति की भावना ये उपनिषदों से प्राप्त होती हैं। यही नहीं आत्म-विद्या पर जो गहनतम विचार उपनिषदों में हुआ है वह अतिगहन और रहस्य भरा है। श्वेताश्वतरोपनिषद् मे भी आत्मा के गुण, परिमाण व स्थान आदि के विषय मे विस्तार से चर्चा की गई है। जिस प्रकार मृत्तिका से मलिन हुआ बिम्ब (सोने या चाँदी का टुकड़ा) शोधन किए जाने पर तेजोमय होकर चमकने लगता है, उसी प्रकार देहधारी जीव आत्मतत्त्व का साक्षात्कार का अद्वितीय, कृतकृत्य और शोकरहित हो जाता है। इसप्रकार यह अजन्मा, निश्चल और समस्त तत्त्वों से विशुद्ध देह को जानकर सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

सन्दर्भ - संकेत

1 सामलेखा, ईश्वरचन्द (२०१४), उणादिकोष, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, पृ. सं. ३९०

2 सामलेखा, ईश्वरचन्द (२०१४), उणादिकोष, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, पृ. सं. ३९१

3 अभिमन्यु मन्नालाल (२०१५), अमरकोश भाषा टीका, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, पृष्ठ संख्या २३

4 विरचित परमहंस, श्रीमच्छंकराचार्य (१९९८), विवेकचूड़ामणि, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, पृ. सं. ३४०

5 विरचित परमहंस, श्रीमच्छंकराचार्य (१९९८), विवेकचूड़ामणि, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, पृ. सं. ३४१

6 शर्मा बलदेवराज, (१९७२), द कन्सैप्ट आफ इन प्रिंसिपल उपनिषद्स, दिनेश पब्लिकेशन दिल्ली, पृ. सं. १४

7 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८८

8 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८८

9 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वीं पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३९९ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः। श्वेताश्वतरोपनिषद् ४.५

10 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३९२ समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यन्त्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ४.७

11 दास स्वामी रामसुख (संवत् २०६०, ४६वाँ संस्करण) श्रीमद्भगवद्गीता साधक-संजीवनी, गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. ४४७, ९४२, ९४६, ७६

12 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३७४ ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता। अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रय यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्। श्वेताश्वतरोपनिषद् १.९

13 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३७६ एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्। भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् १.१२

14 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वीं पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८२ यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम्। तदात्मतत्त्वे तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः॥श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१४ न तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्। अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः। श्वेताश्वतरोपनिषद् २.१५

15 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस ६९. गोरखपुर, पृ. सं. २८९, २०९

(क)-एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणेः प्रचधा संविवेश॥ मुण्डकोपनिषद् ३.१.९

(ख)-एतच्छुत्वात्वसम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृत्य धर्मम्यणुमेतमाप्यः॥ कठोपनिषद् १.२.१३

16 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८९ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्। श्वेताश्वतरोपनिषद् ३.२०

17 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. २२६, २३९ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति॥ कठोपनिषद् २.१.१२ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। कठोपनिषद् २.१.१३ अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः॥ कठोपनिषद् २.३.१७

18 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८७ अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । हृदामनीषी मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ३.१३

19 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वीं पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४०१ अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः । श्वेताश्वतरोपनिषद् ५.८

20 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४०१ बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ५.९

21 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४०२ नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं न नपुंसकः ।यद्यच्छशरीरमाधत्ते तेन तेन स युज्यते ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ५.१०

22 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४०२ संकल्प न स्पर्श न दृष्टिमोहग्रसांबुवृष्ट्यात्मविवृद्धिजन्म । कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसंप्रपद्यते॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ५.११

23 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ४०० गुणावन्यो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव न चोपभोक्ता । स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिकर्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ५.७

24 पोद्दार हनुमान प्रसाद, शास्त्री चिम्मनलाल गोस्वामी (सं. २०६८, ११वाँ पुनर्मुद्रण), उपनिषद् अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. ३८९ वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्॥ श्वेताश्वतरोपनिषद् ३.२१